महाकाव्य व पुराण कालीन सैन्य पद्धति
(MILITARY SYSTEM OF THE EPIC AND PURANIC AGE)

इस काल का समय 800 ईसा पूर्व से लेकर 200 ईसा पूर्व तक माना जाता है। रामायण और महाभारत हमारे जातीय महाकाव्य हैं, इनमें वर्णित धर्म, आचार व्यवहार के नियम, संस्थायें, व्यवस्थायें और प्रथायें हजारों वर्ष बीत जाने पर आज भी हमें प्रेरणा दे रही हैं और हमारी जाति के जीवन के निर्माण में वे प्रमुख भाग ले रही हैं। भारतीय जीवन की वास्तविक आधारशिला यही हैं। रामायण और महाभारत का राजमहल से लेकर कुटिया तक सर्वत्र प्रसार है। हजारों वर्षों से भारत के गाँव और घर-घर में प्रतिदिन इनकी कथा होती चली आ रही है। इनसे भारत की आबाल-वृद्ध बनिता जनता ने केवल आनन्द ही नहीं पाया, अपितु शिक्षा भी ग्रहण की है। वह इन्हें हृदय में ही नहीं रखती अपितु शिरोधार्य भी करती है। ये हमारे धर्म का प्रधान स्रोत, सामाजिक आधार का मेरुदण्ड और संस्कृति के प्राण हैं।

यदि देखा जाये तो रामायण और महाभारत के दोनों कालों में भी अधिक अन्तर है, पर ये दोनों महाकाव्य उस काल की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं जबकि आर्य लोग भारत में स्थाई रूप से बस चुके थे और वे धर्म, सभ्यता तथा समाज के विकास एवं प्रचार तथा प्रसार में लगे हुए थे। वैदिक युग के बाद की और बौद्ध युग के पूर्व की भारतीय संस्कृति, सभ्यता, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और सैनिक दशा के स्वरूप को समझने के लिए इन दो महाकाव्यों से बढ़कर संभवतः अन्य न कोई काव्य और न कोई साधन ही उपलब्ध है। रामायण की रचना महर्षि बाल्मीकि ने लोगों को मानव जीवन के सर्वोच्च आदर्श बताने के लिए की थी। रामायण श्रीराम और रावण के लम्बे और भयंकर युद्ध का वर्णन करता है तो महाकाव्य महाभारत कौरव-पाण्डवों के बीच कुरुक्षेत्र संघर्ष की गाथा है।

रामायण और महाभारत संस्कृत साहित्य के दो अनन्य जाज्वल्यमान रत्न हैं, जो इस दैवी साहित्य को विश्व साहित्य में प्रतिनिधित्व करने में सर्वाधिक सक्षम हैं। यदि रामायण भक्ति भावना, मर्यादा, परोपकार, दया, करुणा, पतिव्रत धर्म आदि का सजीव उदाहरण प्रस्तुत करता है तो महाभारत तेजस्विता, वीरोचित कर्म भावना एवं ज्ञान गाम्भीर्य का एक आदर्श उदाहरण हमारे समक्ष उपस्थित करता है। हमारे देश के अमर विश्वासों के संग्रह के रूप में भी इनकी किसी प्रकार उपेक्षा नहीं की जा सकती। वैदिक और लौकिक युगों के संघर्षमय काल में 'महाभारत' एक सन्धिपत्र के समान है, जिसमें उभय पक्ष के मनीषियों के हस्ताक्षर हैं।

'महाभारत' की एक ऐसे महाकाव्य से तुलना की गई है जिसमें दुर्योधन और युधिष्ठिर क्रमशः क्रोधमय एवं धर्ममय विशाल वृक्ष हैं। इन वृक्षों के क्रमशः कर्ण और अर्जुन स्कन्ध, शकुनि और भीमसेन शाखा, दुःशासन एवं नकुल सहदेव फलपुष्प, धृतराष्ट्र एवं श्रीकृष्ण जड़ बताये गये हैं। इस प्रकार कौरव और पाण्डव उभय पक्षों के वास्तविक

Scanned by CamScanner

स्वरूप का निरूपण करते हुए इन श्लोकों में मानों महाभारत के कथानक का मूल बीज ही प्रस्तुत कर दिया है।

अतः इन दोनों महाकाव्यों का काल एक न होने पर भी ये प्रधान रूप में प्राग्बुद्ध कालीन संस्कृति के उस काल पर प्रकाश डालते हैं जब हिन्दू धर्म और समाज का रूप काफी सुस्थिर हो चुका था। सैन्य संगठन, अस्त्र-शस्त्र, रक्षात्मक साधनों, युद्ध कला आदि में जो महान् उन्नति हुई, उसका ज्ञान इन दोनों महाकाव्यों से भली भांति हो जाता है।

योद्धा वर्ग एवं युद्ध के प्रयोजन

इस युग में वैदिक कालीन वर्णव्यवस्था अधिक विकसित हो गयी थी। ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग साधारण जनता से अलग हो गये थे। राज्य के प्रशासन में क्षत्रिय वर्ग का पूर्ण आधिपत्य हो गया था। लड़ाई लड़ना, आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमणों से जनता की सुरक्षा करना, जनता को सुख-सुविधा प्रदान करना क्षत्रियों का मुख्य कर्त्तव्य था। मुख्य रूप से यही वर्ग युद्ध में भाग लेता था। महाभारत में क्षत्रियों के यौद्धिक कर्त्तव्य के बारे में कहा गया है कि यदि किसी क्षत्रिय को युद्ध की चुनौती दी जाये, तो उसे स्वीकार कर युद्ध करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह अपने कर्त्तव्य की अवहेलना करता है।[1] युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होना सुखद है और स्वर्ग को प्राप्त करने का साधन है।[2] इस युग मे क्षत्रियों के साथ ब्राह्मण भी सैनिक कार्यों में योगदान देते थे। महाभारत द्वारा यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मण की तन्त्र-मन्त्र की शक्ति संग्राम में विजय प्राप्ति हेतु उतनी ही महत्वपूर्ण थी जितनी हथियारों की शक्ति। इन दोनों शक्तियों द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त की जाती थी। मनु के अनुसार संग्राम में विजयोपरान्त राजा देव पूजा करता था और ब्राह्मणों को दान देकर उनका सम्मान करता था।[3]

जब क्षत्रिय वर्ग शासन का पूर्णरूपेण अधिकारी बन गया तो राज्य की कुछ जनता शान्तिकालीन अवस्था में बेकार रहती थी तब धर्मशास्त्रों के माध्यम से यह घोषित कर दिया गया कि क्षत्रिय का रणभूमि में मृत्यु के घाट उतरना स्वर्ग को प्राप्त करना है। इस भावना से प्रेरित होकर क्षत्रिय वर्ग प्रत्येक समय युद्ध के लिए तैयार रहता था। इस युग के क्षत्रिय लोगों में साम्राज्य विस्तार तथा अपने यश को बढ़ाने की भावना अधिक विकसित हो गयी थी। जगह-जगह अश्वमेध यज्ञ का आयोजन चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिए किया जाता था। इन्द्रप्रस्थ के राजा युधिष्ठिर और श्री राम ने इस यज्ञ का आयोजन किया था।

राजाओं के युद्ध साधारणतः राज्य प्राप्ति और दिग्विजय के लिए होते थे। कौरवों और पाण्डवों का युद्ध राज्य प्राप्ति के लिए ही था। पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ से पूर्व दिग्विजय किया। युद्ध के कारण की समीक्षा करते हुए कहा गया है कि राजा भूमि के लिए लड़ते हैं क्योंकि भूमि से ही सब कुछ उत्पन्न होता है। सब कुछ नष्ट होने पर भूमि से पुनः मिल जाता है। भूमि ही सबकी प्रतिष्ठा है, भूमि ही सनातन है। (शान्तिपर्व 8/35-37; 100/4)। कभी-कभी प्रजा भी सामूहिक रूप से संगठित होकर आत्म रक्षा के लिए दस्युओं से लड़ती थी। ऐसे दस्युओं से लड़ने के लिए राजा भी अपनी सेना के साथ जाता था (भीष्म पर्व 4/20-21)। राम ने भी राज्य विस्तार हेतु गान्धार, कामरूप और चन्द्रकान्त आदि राज्यों को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया था।

तत्कालीन समय में धर्मशास्त्रों ने क्षत्रियों को बहु-विवाह की मान्यता प्रदान कर दी थी। साधारण क्षत्रिय दो और शासक वर्ग अनेक विवाह कर सकते थे। इस काल में 8 प्रकार के विवाहों का प्रचलन था जिसमें राक्षस विवाह का प्रचलन क्षत्रियों में अधिक था। अर्जुन का सुभद्राहरण, कृष्ण का रुकमणीहरण आदि राक्षस विवाह के द्योतक हैं। महाभारत में भीष्म ने कहा है कि बलपूर्वक कन्या का हरण करके उसके साथ शादी कर लेना स्वयंवर विवाह से भी अधिक अच्छा है।

Scanned by CamScanner

रामायण और महाभारत के अनुसार युद्ध राज कन्याओं के लिए भी होते थे। स्वयंवर ऐसे युद्ध के लिए अखाड़ा ही होता था। सीता को पाने में असफल राजाओं ने क्रुद्ध होकर मिथिलापुरी पर धावा बोल दिया था। क्योंकि धनुष द्वारा बल की परीक्षा देने में उन्होंने अपमान समझा (बालकाण्ड 66/14-24)। द्रोपदी के स्वयंवर के अवसर पर निराश राजाओं ने कहा—यदि कन्या क्षत्रिय राजा को वरण नहीं करती तो आग में डाल दी जाये। उसका पिता भी दण्डनीय है। वे द्रुपद को मारने दौड़े। इस अवसर पर अर्जुन और भीम ने युद्ध में अपना पराक्रम दिखाया। जयद्रथ, द्रौपदी का अपहरण करते समय, उसके पति पाण्डवों के द्वारा युद्ध में परास्त किया गया।

अपहृत नारियों को मुक्त करने के लिए युद्ध हुआ करते थे जैसे—राम-रावण युद्ध, बालि-सुग्रीव युद्ध; पाश्चात्य युद्धों में नेलास-पेरिस युद्ध आदि। प्रतिशोध भी तत्कालीन युद्ध का एक कारण था जैसे परशुराम ने समस्त क्षत्रियों का सर्वनाश करने के लिए संकल्प लिया था क्योंकि उनके पिता की एक क्षत्रिय राजा ने हत्या कर दी थी। मित्रों के लिए भी युद्ध होते थे जैसे राम ने सुग्रीव के लिए बालि को मारा। सम्पत्ति के लिए युद्ध ठन जाता था जैसे रावण ने इसी भावना से प्रेरित होकर यक्षों के राजा कुवेर पर धावा बोला था और उन्हें द्वन्द युद्ध में परास्त कर उनकी राजधानी लंका को पुष्पक विमान सहित हथिया लिया था।

इस प्रकार तत्कालीन युद्धों की समीक्षा से ज्ञात होता है कि युद्ध के प्रायः 8 कारण होते थे[4]—(1) अपहृत नारी को मुक्त करना, (2) मित्रों की सहायता, (3) प्रतिशोध हेतु, (4) सार्वभौम सत्ता के लिये, (5) कुशासक पड़ोसी को दण्ड देने के लिए, (6) सम्पत्ति के लिए, (7) नारी के लिए, (8) राज्य विस्तार के लिए आदि।

वास्तव में युद्ध अन्तिम अवस्था में ही किया जाता था। पहले साम, दाम और भेद की युक्तियों से काम लिया जाता था। इन तीनों के असफल होने पर ही दण्ड का प्रयोग किया जाता था। (युद्ध काण्ड 9/8)।

सैन्य संगठन एवं सेनांग

सेना के चार अंग—पैदल, रथ, अश्व और गज होते थे। इन चारों विभागों से निर्मित सेना को 'चतुरंग बल' कहा जाता था। इस काल में रथ सेना पर अधिक बल प्रदान किया जाता था। मनुस्मृति[5] में छः प्रकार की तथा महाभारत[6] में आठ प्रकार की सेना का वर्णन किया गया है अर्थात् रामायणकाल का ही 'चतुरंग बल' महाभारत और पुराण काल में षष्टांग बल और अष्टांग बल का रूप ग्रहण कर लिया। मनु के मतानुसार चार प्रकार की सेना के अलावा कर्मचारी वर्ग आदि को भी सेना में सम्मिलित कर लिया गया था। महाभारत के अनुसार युद्ध सामग्री ढोने वाला वर्ग, चिकित्सक, नौका वर्ग, दूत और उपदेशक वर्ग को भी सैनिक वर्ग में गिना जाता था। कुछ विद्वानों ने कोष और सलाहकार समिति को भी सेना का रूप माना है। युद्ध में उपरोक्त चार सेनायें ही भाग लेती थीं। शेष सेनायें सहायता पहुँचाने अथवा देने का कार्य करती थीं। इस युग में रथ पर दो व्यक्ति होते थे। पहला रथ चलाने वाला और दूसरा युद्ध करने वाला। उदाहरण के लिए कुरुक्षेत्र संग्राम में भगवान श्रीकृष्ण सारथी और अर्जुन ने योद्धा के कर्त्तव्य का पालन किया था। पैदल सेना इस युग में दो भागों में विभक्त थी—तलवार, बर्छी से युद्ध करने वाले और धनुष-बाण से लड़ने वाले।[7]

सैनिकों की श्रेणियाँ छः प्रकार—मित्र बल, अमित्र बल, मौल बल, भृतक बल, श्रेणी बल और आटवी बल की थीं। मित्र राजाओं की सेना को मित्र बल, शत्रु देशों की विजित सेना को अमित्र बल, मूल स्थान राजधानी की रक्षा करने वाली सेना को मौल बल कहते थे। इस सेना में वंश परम्परागत राजपूत सैनिक रहते थे। यह सेना का सबसे सर्वोत्कृष्ट अंग होता था। इनको जागीर दी जाती थी। उल्लेखनीय है कि इनमें वेतन भोगी सैनिक नहीं होते थे।

Scanned by CamScanner

वेतन भोगी सैनिकों की सेना को भृतक बल, विभिन्न कार्यों में नियुक्त कुशल सेना को श्रोणीबल तथा जंगली जाति की सेना को आटवी बल कहा जाता था।[8]

सम्पूर्ण सेना इकाइयों में बंटी हुई थी, जिनकी सबसे छोटी इकाई पत्ति और बड़ी इकाई 'अक्षौहिणी' होती थी। इसकी पुष्टि हमें रामायण और महाभारत दोनों से होती है। चित्रकूट यात्रा के समय भरत की अक्षौहिणी सेना में 9000 हाथी, 60,000 रथ, अनेक प्रकार के शस्त्रधारी धनुर्धर तथा 1 लाख घुड़सवार सैनिक थे।[9] सेना के प्रधान को सेनापति अथवा सेनाध्यक्ष कहा जाता था। सेनापति राजा के आदेशानुसार युद्ध का संचालन करता था। सेना की सबसे छोटी इकाई 'पत्ति' थी। इस प्रकार 9 टुकड़ियों में पूरी सेना संख्या के अनुपात से निम्न प्रकार से विभाजित थी।[10]

इकाई	रथ	हाथी	घोड़े	पैदल	योग
1. पत्ति	1	1	3	5	10
2. सेनामुख (तीन पत्ति)	3	3	9	15	30
3. गुल्म (तीन सेनामुख)	9	9	27	45	90
4. गण (तीन गुल्म)	27	27	81	135	270
5. वाहिनी (तीन गण)	81	81	243	435	810
6. पृतना (तीन वाहिनी)	243	243	729	1215	2430
7. चमू (तीन पृतना)	729	729	2187	3645	7290
8. अनीकिनी (तीन चमू)	2187	2187	6561	10935	21870
9. अक्षौहिणी (दस अनीकिनी)	21870	21870	65610	109350	218700

उल्लेखनीय है कि सेना के विभाग पत्ति, सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकिनी और अक्षौहिणी इकाइयों में विभाजित होते थे जिसकी तुलना आधुनिक सेना के रेजीमेंट, बटालियन, कम्पनी, प्लाटून तथा सैक्शन आदि से की जा सकती है। इन इकाइयों के नायक के रूप में पत्तिक, सेनामुखपत्ति, गुल्मपति, गणपति, वाहिनीपति, पृतनापति अनीकिनीपति और अक्षौहिणीपति में आठ सेनाधिकृत पद थे, परन्तु चमू अधिपति के रूप में कोई दिखाई नहीं पड़ता। अक्षौहिणी के सेना पति को अक्षौहिणीपति की संज्ञा दी जाती थी। पाण्डवों के सात अक्षौहिणी सेना के एक-एक के अक्षौहिणीपति थे—द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, सत्याकि, चेकितान और भीमसेन तथा अर्जुन सेनापति थे।[11]

रथ सेना के पदाधिकारियों के नाम—रथोदार, रथ, अतिरथ, अर्द्धरथ, महारथ, रथमूथम यूथम आदि थे। कौरव दल में भीष्म अतिरथ, कर्ण कर्द्धरथ, अश्वत्थामा महारथ, कृपा भूरिध्रवा और रथयूथम-यूथद, मत्स्यराज शल्य अतिरथ थे। पाण्डवों की सेना में युधिष्ठिर रथोदार, अभिमन्यु, सात्यकि और अर्जुन रथयुथय-यूथप, विराट और द्रुपद महारथ तथा धृष्टद्युम्न अतिरथ कहलाते थे। रथसेना का सर्वोच्च पदाधिकारी रथयूथप यूथप होता था। उसके समक्ष या छोटा अतिरथ, इनके बाद अर्द्धरथ और सबसे छोटा पदाधिकारी रथोदार होता था। इससे स्पष्ट है कि युधिष्ठिर बड़े भाई होते हुए भी सबसे छोटे पदाधिकारी थे जबकि अर्जुन सर्वोच्च पदाधिकारी। इससे संकेत मिलता है कि पदाधिकारी की नियुक्ति योग्यता पर निर्भर करती थी।

महाभारत के उद्योगपर्व में 18वें अध्याय से ज्ञात होता है कि कुरुक्षेत्र के रणस्थल पर पाण्डवों की सात और कौरवों की 11 अक्षौहिणी सेनायें थीं।

सैनिक भर्ती तथा वेतन भत्ता आदि

सेना में मुख्य रूप से क्षत्रिय लोग ही भर्ती होते थे। लंका और किष्किंधा में सम्पूर्ण वयस्क

Scanned by CamScanner

लोगों को सेना में भर्ती होना पड़ता था। मनु के अनुसार सेना में कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पंचाल और शूरसेन के लोगों की भर्ती की जाती थी। इस काल में स्थाई सेना रखी जाने लगी थी जिसका मुख्य कार्य दुर्गों की रक्षा एवं राज्य में शांति स्थापित करना था। इसकी पुष्टि हमें रामायण से होती है। बाल्मीकि रामायण के अनुसार लंका नरेश रावण ने लंका दुर्ग के चारों द्वारों पर स्थाई सेना रखी थी जिसका हनुमान ने प्रत्यक्ष अवलोकन किया था। साथ ही स्थाई सेना के रूप में 14000 सैनिकों की सेना जन-स्थान में नियत थी जिसके सेनापति खरदूषण थे। (अयोध्या काण्ड 122/10, 2/2/230/35) । स्थाई सैन्य पदाधिकारी भी होते थे। उनमें सेनापति एवं दुर्ग रक्षकाधिकारी राज्य के प्रमुख 18 अधिकारियों में गिने जाते थे।[12] सैनिकों को नियमित रूप से वेतन दिया जाने लगा था। सैनिकों को युद्ध क्षेत्र में जाने के लिए भत्ता आदि भी प्रदान किया जाता था तथा नियमित रूप से वेतन पर विशेष बल दिया जाता था। जिसकी पुष्टि हमें रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थों से होती है। जब भरत राम को मनाने के लिए चित्रकूट गये थे तब भरत से राम ने राजनीतिक प्रश्नों के दौरान पूछा था कि हे भरत! सैनिकों को देने के लिए नियत किया हुआ समुचित वेतन और भत्ता समय पर देते हो न। वेतन भुगतान में विलम्ब तो नहीं करते हो क्योंकि यदि समय बिताकर वेतन और भत्ता आदि का भुगतान किया जाता है तो सैनिक अपने स्वामी से बहुत असन्तुष्ट रहते हैं और उसके कारण बहुत अनर्थ हो जाता है (बा.रा. अयोध्याकाण्ड 100/30/32) । महाभारत (सभापर्व 61/20) में शान्ति एवं युद्ध के समय और शान्ति पर्व से संकेत मिलता है कि सैनिकों को युद्ध क्षेत्र में जाने एवं युद्ध में मरे सैनिकों के परिवारों को अतिरिक्त सहायता भत्ता दिया जाता था। महाभारत के अनुसार युवावस्था, ऊँचे कन्धे, चौड़ी छाती, लम्बी गर्दन, तीक्ष्ण और पैने नेत्र, अच्छे दांत और मर मिटने की भावना आदि गुणों से युक्त कोई व्यक्ति सैनिक बन सकता था।

अस्त्र-शस्त्र

यद्यपि वैदिक काल की अपेक्षा आयुधों का विकास रामायण काल में ही हो चुका था, फिर भी महाभारत एवं पुराण काल में इस क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति हुई। कई नवीन शस्त्रों का निर्माण एवं प्रयोग युद्धों में किया गया क्योंकि युद्धों की बहुलता ने जहाँ रणनीति को प्रभावित किया और उन्हें नियमित करने की प्रेरणा दी थी, वहीं युद्ध भूमि में मिलने वाली जय पराजय ने अस्त्र-शस्त्र के विकास, नूतन प्रयोगों और अनुसंधानों के लिए भी समान रूप से प्रेरणा दी। तत्कालीन महाकाव्यों में जिस प्रकार के अमोघ तथा विचित्र अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन मिलता है, वह आज के आधुनिक युग के लिए भी एक चुनौती हैं।[13] रामायण में जहाँ वानरों द्वारा आदिम मानव के युद्धास्त्रों का प्रयोग मिलता है वहीं राक्षसों द्वारा आधुनिक युद्धास्त्रों के प्रयोग के उदाहरण प्राप्त होते हैं। महाभारत के सभी वीर किसी न किसी विशेष शस्त्र में निष्णात थे। अर्जुन धनुष चलाने में तो भीष्म व दुर्योधन गदा में, नकुल सहदेव तलवार में और कृष्ण सुदर्शन चक्र के प्रयोग में। तत्कालीन समय में शस्त्रास्त्रों की सैकड़ों हजारों किस्में थीं। राम को विश्वामित्र ने 55 दिव्यास्त्रों को चलाने और लौटाने की शिक्षा दी थी (अयोध्याकाण्ड 26/4-20; 1/28/4-19) । महाभारत में भी हमें सैकड़ों दिव्यास्त्रों की जानकारी होती है जो तत्कालीन युग में आधुनिक विध्वंसकारी न्यूक्लियर (नाभिक) अस्त्र के समान थे। संक्षेप में अग्रलिखित अस्त्र-शस्त्र प्रमुख थे[14]—

(1) ब्रह्मास्त्र — यह व्यक्तिगत तथा सैन्य सामूहिक रूप से महान् संहारक नाभिक (न्यूक्लियर) अस्त्र था।

(2) वायव्यास्त्र — यह सामूहिक रूप से शत्रु सेना का संहारक था। इसके प्रयोग से शत्रु सेना में प्रचण्ड आंधी (वायु) चलने लगती थी।

Scanned by CamScanner

(3) आग्नेयास्त्र	आधुनिक अणु अस्त्रों के समान शत्रु सेना में आग उत्पन्न कर देने वाला महान् संहारक अस्त्र था।
(4) आसुरास्त्र	यह भी संहारक अस्त्र था किन्तु मार्के की बात यह है कि सम्पूर्ण सेना का संहार न करके केवल किसी व्यक्ति विशेष (लक्ष्य) को मौत के घाट उतारता था।
(5) वरुणास्त्र	यह शत्रु सेना में भयंकर जलवृष्टि एवं बाढ़ पैदा करता था।
(6) रौद्रास्त्र	यह भी शत्रु सेना का संहारक था।
(7) ऐन्द्रास्त्र	यह भी शत्रु सेना का संहारक था जिसकी तुलना आधुनिक प्रक्षेपास्त्रों से की जा सकती है।
(8) वारायणास्त्र	इसके प्रयोग से शत्रु सेना में प्रदीप्त गोले तथा शोले गिरने लगते थे।
(9) गरुणास्त्र	इसके प्रयोग से शत्रु सेना में सैकड़ों गरुड़ प्रकट होकर हलचल मचा देते थे।
(10) जलौधास्त्र	मूसलाधार वर्षा का सृजन करता था।
(11) आदित्यास्त्र	मूसलाधार वर्षा का खण्डन करता था।
(12) वैष्णवास्त्र	इसके प्रहार से कृष्ण के अलावा कोई बच नहीं सकता था।
(13) नारायणास्त्र	महाभारत कालीन इस अस्त्र के प्रयोग से आत्म समर्पण वाला सैनिक बच जाता था।
(14) सुदर्शन	यह कृष्ण का प्रिय आयुध था। यह शत्रु का सफाया कर कृष्ण के हाथों पुनः लौट आता था।
(15) प्रस्वाय	इसके प्रयोग से शत्रु चेतना शून्य हो जाता था। इसके प्रयोग की जानकारी मात्र भीष्म को थी।

शस्त्र

शस्त्र भी निम्नलिखित प्रकार के होते थे[15]—

1. धनुष	2. बाण	3. तलवार (खड्ग), असि
4. गदा	5. शूल अथवा त्रिशूल	6. शक्ति (बर्छी)
7. परशु	8. पाश	9. वज्र
10. भिन्दियाल	11. खट्वाँग	12. तोमर
13. चक्र	14. अंकुश	15. मूसल
16. मुग्दर	17. परिधि	18. पट्ठिश
19. कुन्त	20. हल	

21. शतघ्नी (सौ व्यक्तियों की संहारक या एक साथ सौ गोले फेंकने वाली तोप)
22. इषूपल (यह भी तोप थी जो शत्रु पर पत्थरों एवं तीरों की वर्षा करती थी)

उपर्युक्त शस्त्रास्त्रों के अतिरिक्त महाभारत के उद्योग पर्व, अध्याय 55, द्रोण पर्व, वनपर्व, मौप्तिक पर्व में भी कुछ अन्य आयुधों का वर्णन इस प्रकार है—

(1) कच ग्रहविक्षेप यंत्र	इस यन्त्र से शत्रु को केश (बाल) पकड़कर दूर फेंका जाता था।
(2) तेल गुड़-बालू यन्त्र	इसके द्वारा शत्रु पर उबलता हुआ तेल, गुड़, बालू आदि फेंका जाता था।
(3) सर्जरसपांसु यन्त्र	इस यन्त्र द्वारा पाल द्रव्य फेंका जाता था जिससे शत्रु जलने लगता था।
(4) आशीविषधर यन्त्र	इस यन्त्र द्वारा शत्रु पर सर्पों से भरे घड़े फेंके जाते थे।
(5) आयोगुण्ड जलोपल	इसके द्वारा शत्रु पर तलवार, छुरी, भृति, गर्म गोले फेंके जाते थे।

Scanned by CamScanner

(6) शार्लभिन्दियाल	शब्द करते हुए भिन्दियाल फेंकने वाला यन्त्र।
(7) पर्जान्यास्त्र	इसके माध्यम से पृथ्वी से जल निकाला जाता था। शर शय्या पर लेटे भीष्म को, अर्जुन ने इसी अस्त्र के प्रयोग द्वारा धरती छेद कर स्वच्छ जल पिलाया था।
(8) इन्द्रास्त्र	अर्जुन ने इसके द्वारा (विराट पर्व) द्रोण, कर्ण, भीष्म, कृपाचार्य और अश्वत्थामा आदि के सम्मिलित आक्रमण को निष्फल कर दिया था।

अंगरक्षक आयुध

इन अस्त्र-शस्त्रों के अतिरिक्त शरीर की सुरक्षा हेतु अंगरक्षक आयुधों का प्रयोग तत्कालीन समय में होता था। इन प्रतिरक्षात्मक आयुधों का उल्लेख रामायण और महाभारत में किया गया है जिसमें यथा वर्म या कवच, अभेद्य कवच, आर्षभ-चर्म, गोघा (कलाई पर बाँधने वाला चमड़ा), तनुत्राण, मर्मत्राण, अंगुलित्राण और शिरस्त्राण आदि प्रमुख थे। ये सोने, लोहे, चांदी, तांबे आदि के बने होते थे (विराट पर्व 58)। रामः रावण युद्ध में दोनों पक्षों के प्रमुख वीरों द्वारा इसका प्रयोग किया गया। महाभारत के कुरुक्षेत्र में सभी सैनिकों की अंगुलियों को ढकने के लिए अंगुलित्राण थे और सभी गोह, हिरन आदि के चर्म से निर्मित थे (भीष्मपर्व अध्याय 16 एवं 18)। दुर्योधन का शिरस्त्राण देखने में भयंकर था (भीष्म पर्व 64)। सैनिक अपनी कलाइयों पर बैल के चमड़े की बनी पट्टियाँ बांधे थे (भीष्मपर्व, 88)। जयद्रथ सोने का कवच धारण किये हुए था जो सौमद्र के खड्ग के प्रहार से दो टुकड़े हो गया (द्रोण पर्व 47/17)। महायोद्धा कृपाचार्य का वर्म बाघ-चर्म का बना था (विराट पर्व 1/54)। सैनिकों के वर्मकवच आदि के साथ युद्ध क्षेत्र में नियुक्त अश्व, हाथी आदि के लिए भी वर्म का प्रयोग होता था। भीष्म कहते हैं—

गजानां पार्थ वर्माणि गो वृषाजगराणि च।
शल्य कण्टकोहानि तनुत्राणि मतानि च।।

दुर्ग-विधान एवं शिविर रचना

दुर्ग परिखा आदि का महत्व वैदिक काल की अपेक्षा महाकाव्य युग में अधिक बढ़ गया। नगरों का प्रादुर्भाव होने लगा था जिनकी जनसंख्या वैदिक युग की अपेक्षा अधिक थी। नगरों के निकट गाँव होते थे। शत्रु आक्रमण के बचाव हेतु नगर दुर्गों के रूप में बनाये जाते थे। रामायण में चार प्रकार के दुर्गों का उल्लेख किया गया है—नादेय, पार्वत, वन्य और कृत्रिम।[16] महाभारत वनपर्व 84 में लंका के दुर्ग और परिखाओं के बारे में उल्लेख किया गया है। यहाँ के दुर्ग की दीवारें ऊँची, मजबूत तथा खाइयों से सुरक्षित होती थीं। सात खाइयाँ थीं जो जल से लबालब भरी हुई थीं और जल में मगरमच्छ थे। दीवारों के ऊपर अधिक संख्या में शतघ्नी लगी हुई थीं। दुर्ग के अन्दर प्रवेश करने के लिए खाई पर पुल बने होते थे जिनके दोनों किनारों पर विध्वंसक यन्त्र लगाये जाते थे।[17] रामायण के बालकाण्ड अध्याय 5 में अयोध्या नगर के दुर्गों का वर्णन है। महाभारत के शान्तिपर्व (86/5/15) में छः प्रकार के दुर्गों का उल्लेख है—मरु दुर्ग, मही दुर्ग, गिरि दुर्ग, मनुष्य दुर्ग, मृद दुर्ग और वन दुर्ग। इन्हीं दुर्गों के सहारे नगर निर्मित करने का निर्देश भीष्म ने दिया था। महाभारत के शान्तिपर्वत 100/15 में भीष्म द्वारा कहा गया है कि वही दुर्ग सर्वश्रेष्ठ है जिसके चारों तरफ जल से भरी हुई खाई हो और केवल एक ही फाटक हो। युद्ध क्षेत्र में भी सेना किलेबन्दी किया करती थी।

रामायण और महाभारत से स्पष्ट होता है कि सैन्य शिविर युद्ध के समय स्थापित किये जाते थे। राम ने भी हिन्द महासागर के तट पर सैन्य शिविर स्थापित किया था। शिविर के

Scanned by CamScanner

लिए उत्तम स्थान, जल, फल, फूल आदि का भी चयन किया जाता था। अधिकांश शिविर नदियों के किनारे स्थापित किये जाते थे। (64/11) ।

सैनिक शिक्षण प्रशिक्षण व्यवस्था

तत्कालीन समय में स्थाई सेना होने के कारण तथा क्षत्रिय वर्ग के कर्तव्य की सीमा के दृढ़ रूप में निश्चित हो जाने के कारण सैनिक शिक्षा का महत्व बढ़ गया था। भर्ती किये जाने वाले सैनिकों को युद्ध शिक्षा दी जाती थी। स्थाई सेना के अतिरिक्त जो व्यक्ति युद्ध के समय सैन्य सेवा के लिए भर्ती होते थे, वे अपने-अपने गाँवों की पाठशालाओं में सैनिक शिक्षा प्राप्त करते थे। तत्कालीन आश्रम युद्ध-विद्या के स्थाई केन्द्र थे। राजकुमारों और उच्च कुल के पुत्रों के लिए राज्य की ओर से सैनिक पाठशालायें होती थीं।[18] सैनिक पाठशालाओं में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए अनेक प्रकार के प्राध्यापकों का उल्लेख रामायण में मिलता है। उनसे गुरु (अयोध्याकाण्ड 11/3) प्रवक्ता, वह था, जिसका अपने शिष्यों से पिता-पुत्र का सम्बन्ध होता था और जो अपने ही प्रशिक्षण केन्द्र में रहने वाले शिष्यों को उनकी योग्यतानुसार शस्त्राध्ययन कराता था।

गुरु के बाद उपाचार्य (रीडर) और उपाचार्य के बाद आचार्य (प्रोफेसर) (अयोध्याकाण्ड/ 111/14) और कुलपति (अयोध्याकाण्ड 116/4) की गणना की जाती थी। कुलपति शिक्षा संस्था का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था।[19]

प्रशिक्षण केन्द्रों में शिष्यों को कठोरतम अनुशासन का पालन करना पड़ता था। विश्वामित्र की अधीनता में राम और लक्ष्मण दोनों को ही तृणों पर शयन करना पड़ा था। इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारों की सैनिक शिक्षा का एक आश्रम अयोध्या में था। राम को स्नातक स्तर की शिक्षा 'सुधन्वा' में प्राप्त हुई थी और स्नातकोत्तरीय शिक्षा उन्हें विश्वामित्र से मिली। महाभारत में उल्लेख है कि गुरु द्रोणाचार्य हस्तिनापुर में स्थित राज्याश्रय प्राप्त आश्रम द्रोणाश्रम था। जो तत्कालीन समय का बहुत बड़ा सैनिक शिक्षालय था। ऋचीक के पुत्र के जमदग्नि का जमदग्न्याश्रम था, जमदग्नि ऋषि के ज्येष्ठ पुत्र परशुराम को भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि वीर योद्धाओं के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त था। अगस्त्य के प्रमुख शिष्य अग्निवेश्य का आश्रम भी प्रसिद्ध था। सान्दीपनि के आश्रम का उल्लेख सभापर्व के 54वें अध्याय में किया गया है। कृष्णबलराम को शिक्षा यहीं प्राप्त हुई थी। इस आश्रम में वेद के अलावा लेखा, गणित, हस्ति शिक्षा, अश्व शिक्षा, धनुर्वेद आदि की भी शिक्षा प्रदान की जाती थी। रामायण कालीन अगस्त्य आश्रम में ज्ञान विज्ञान की शिक्षा के साथ रण विद्या, आयुध ज्ञान, रथ संचालन आदि की भी शिक्षा दी जाती थी।

इस आश्रम में कई विभाग थे। महेन्द्र विभाग में आक्रमणात्मक एवं प्रतिरक्षात्मक आयुधों की शिक्षा, गरुड़ स्थान में यातायात एवं यान, कार्तिकेय स्थान में शिक्षार्थी गुल्म, पत्ति, वाहिनी आदि के संचालन की शिक्षा प्राप्त करते थे।

आदि पर्व में एक विश्वविद्यालय का वर्णन है जो नगर से कुछ दूर वन में था, जिसमें नवयुवक अन्य विषयों की शिक्षा के साथ ही सैन्य विज्ञान की शिक्षा भी प्राप्त करते थे। रामायण और महाभारत से स्पष्ट होता है कि क्षत्रिय कुल के बालक 16 वर्ष की आयु में ही सैनिक शिक्षा पूर्ण कर लेते थे। अभिमन्यु 16 वर्ष की आयु में ही एक निपुण योद्धा बन बैठा। रामायण में उल्लेख है कि जब विश्वामित्र महाराज दशरथ से राम और लक्ष्मण को माँग रहे थे तब दशरथ ने कहा था कि मेरा राम अभी 16 वर्ष का नहीं हुआ है तथा उनकी अभी शस्त्र विद्या भी पूरी नहीं हुई है। (बालकाण्ड 20/2/7) । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तो शिक्षालयों में शिक्षा पा सकते थे परन्तु शूद्रों को यह अवसर प्राप्त नहीं था। फिर भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रयत्नरत रहते थे। उदाहरणार्थ एकलव्य ने उच्च कोटि की युद्ध विद्या प्राप्त की थी।

Scanned by CamScanner

सैनिक शिक्षालयों में प्रवेश हेतु युद्ध योग्यतायें अपेक्षित थीं। दीर्घकाय एवं फुर्तीले विद्यार्थी ही प्रवेश करते थे। शुक्राश्रम में सैन्य शिक्षा के लिए पाण्डु पुत्र ने जब प्रवेश लिए तब भीम को गदा युद्ध विद्या सिखाई गई। जब सैनिक (विद्यार्थी) हथियारों के ज्ञान में पारंगत हो जाते थे तब आश्रम में उनकी विभिन्न ढंग से परीक्षा ली जाती थी। शिक्षा की समाप्ति के बाद दीक्षान्त समारोह होता था जो आधुनिक विश्वविद्यालयों के दीक्षान्त समारोह से साम्य रखता है। समारोह के अवसर पर राज्य के सभी सम्भ्रान्त नागरिक और प्रतिष्ठित वीर उपस्थित होते थे। इस अवसर पर कृत्रिम समरांगण में युद्ध कला का प्रदर्शन होता था। (विराट पर्व 54/4) ।

सैन्य प्रस्थान एवं समूह रचना

यौद्धिक तैयारियों के बाद सैन्य प्रस्थान निश्चित समय पर देवपूजा के उपरान्त होता था। विजिगीषु राजा को अपनी यात्रा का समय, शत्रु की शक्ति, आभ्यान्तर विपत्तियों का प्रतिकार, लाभ-हानि का ध्यान रखना पड़ता था। मौसम एवं महीने का निर्धारण ही सैन्य प्रस्थान के लिए निश्चित समय नहीं होता था बल्कि ज्योतिषियों द्वारा शुभ मुहूर्त, लग्न आदि के निश्चित करने पर ही सैन्य प्रस्थान किया जाता था। महाभारत (शान्तिपर्व 100/16) में भीष्म ने कहा है कि जो राजा शुभ मुहूर्त में नक्षत्र एवं चन्द्रमा का विचार करके यात्रा करते हैं, उनकी विजय निश्चित होती है। राम ने भी शुभ मुहूर्त, नक्षत्र आदि का विचार करके सुग्रीव से कहा था—हे नरेश ! इसी मुहूर्त में, युद्ध यात्रा करना मुझे अच्छा जान पड़ता है, क्योंकि सूर्य मध्य आकाश में आ गया है, इसलिए अभिजित नामक विजय मुहूर्त है। आज उत्तरा फाल्गुनी नामक नक्षत्र है। कल चन्द्रमा हस्त नक्षत्र में होगा। इसलिए हे सुग्रीव हम सभी सैन्य सहित आज ही लंका के लिए प्रस्थान कर दें। (युद्धकाण्ड 4/3-5)।

आमने-सामने के युद्ध को व्यूह रचना सैन्य संचालन का एक प्रमुख कौशल माना जाता था। मनुस्मृति (6/186-188) के अनुसार चारों ओर भय होने पर दण्ड व्यूह, यदि पार्श्व से भय हो तो वराह व्यूह या गरुड़ व्यूह, यदि आगे पीछे से भय हो तो मकर व्यूह और केवल आगे से भय हो तो सूची व्यूह के आकार में सेना को सजाकर यात्रा करनी चाहिए। लंका अभियान के समय राम की सेना गरुड़ व्यूह में रची गयी थी। रावण ने सूची व्यूह में अपनी सेना सजाकर राम से लोहा लिया था क्योंकि उसको मात्र सामने से ही भय था। महाभारत (भीष्म पर्व-18-20) में व्यूह रचना का विस्तृत विवरण दिया गया है। सेना के अग्रभाग में महारथी, मध्य में युद्ध सामग्री से युक्त वाहन और राजा तथा पृष्ठ भाग में प्रमुख सेनाध्यक्षों के नेतृत्व में मुख्य सेना चलती थी। कुरुक्षेत्र में भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि ने जिस व्यूह की रचना की उसके अंग में गजारोही, शीर्ष में नृपतिगण, पार्श्व में अश्वारोही सेना स्थापित हुई थी अर्थात् सर्वतोभद्र व्यूह मानो हँसते हुए सेना बढ़ रही हो।

कुरुक्षेत्र संग्राम में प्रथम दस दिन तक भीष्म प्रत्येक नये नये व्यूह की रचना करते थे और इनका सामना करने के लिए पाण्डव पक्ष में अर्जुन और धृष्टद्युम्न भी नवीन व्यूहों की रचना करते थे। इन दस दिनों के युद्ध के दौरान कौरव पक्ष गरुड़, मकर, क्रौंच, मण्ड, कूर्म, सर्वतोभद्र आदि की और पाण्डव पक्ष क्रौंचारुण, अर्द्धचन्द्र, मकर, वज्र, आदि व्यूहों की रचना कर संग्राम लड़ते रहे। भीष्म को राम की भाँति गरुड़ व्यूह प्रिय था और कर्ण को अर्द्धचन्द्र। संक्षेप में तत्कालीन व्यूहों की रूप रेखा निम्न प्रकार थी"—

(1) *दण्ड व्यूह* — दण्ड के समान बराबर तथा लम्बी सेना की रचना को दण्ड व्यूह कहते हैं।

(2) *शकट व्यूह* — अग्रभाग में पतली और पृष्ठ भाग में अधिक फैली हुई सेना की रचना को शकट व्यूह कहते हैं।

Scanned by CamScanner

(3) वराह-व्यूह — अग्र तथा पृष्ठ भाग में पतली और मध्य भाग में फैली हुई सेना की रचना को वराह-व्यूह कहते हैं।

(4) मकर व्यूह — वराह व्यूह के विपरीत अर्थात् आगे पीछे फैली और बीच में पतली सेना की रचना को मकर व्यूह कहते हैं।

(5) सूची व्यूह — चींटियों की पंक्ति के समान आगे पीछे सटी हुई सेना की रचना को सूची व्यूह कहते हैं।

(6) गरुड़ व्यूह — वराह के समान किन्तु बीच में अधिक फैली हुई सेना की रचना को गरुड़ व्यूह कहते हैं।

(7) वज्र व्यूह — तीन ओर फैली सेना को वज्र व्यूह कहते हैं।

(8) कमल व्यूह — चारों ओर सेना को फैलाकर राजा मध्य में रखा जाता है।

युद्धों के प्रकार

तत्कालीन समय में दो प्रकार के युद्ध सम्पन्न होने लगे थे—धर्म युद्ध और कूट युद्ध। धर्म युद्धों में निर्धारित नियमों का परिपालन किया जाता था और शत्रु सेना को बिना संहारे (रक्त पात) किये पराजय स्वीकार कराना मुख्य लक्ष्य होता था तथा कूट युद्ध में छल-कपट आदि उपायों के द्वारा शत्रु को मारने का मुख्य लक्ष्य होता था। राम-रावण युद्ध और कौरव-पाण्डव युद्ध में इन युद्धों का प्रयोग हुआ था। एक ओर जहाँ राम धर्म युद्ध के पोषक थे तो वहीं दूसरी ओर रावण धर्म युद्ध का योद्धा नहीं था। अन्याय, पाप, झूठ सबका आश्रय लेकर येन-केन-प्रकारेण विजयी होना चाहता था। कूट युद्ध को महाभारत (शान्ति पर्व 96/1/2) में अधर्म विजय कहा गया है। अधर्म द्वारा अर्जित विजय वीर को नरक की ओर ले जाती है। शान्ति पर्व में भीष्म, युधिष्ठिर से कहते हैं कि—"विजय प्राप्ति के लिए राजा धर्म और अधर्म दोनों का सहारा लेते हैं..... क्षत्रिय राजा धर्महीन विपक्षी पर आक्रमण नहीं करेंगे[21] वे शठ योद्धा के साथ शठता से और धार्मिक योद्धा के साथ धर्मानुसार युद्ध करेंगे। पराजित व्यक्ति पर प्रहार नहीं करेंगे। विषाक्त बाण वर्जनीय है, असाधु व्यक्ति ही ऐसे बाणों का प्रयोग करते हैं। (शान्ति पर्व 95/11)। जिसका शस्त्र टूट गया है या वाहन घायल हो गया है, जो शरणागत है उसका वध मत करना। घायल शत्रु की मरहम पट्टी करोगे या अपने घर भेज दोगे। घाव भरने के बाद शत्रु को मुक्ति दे दोगे—यदि शान्ति स्थापना साध्य है तो युद्ध में प्रवृत्त होना अनुचित है। साम, दाम और भेद नीति असफल होने पर ही युद्ध करना...।

युद्ध क्षेत्र में सेना को विभिन्न रूपों में संवार कर लड़ाया जाता था। यदि सेना की संख्या अधिक है तो फैलाकर और कम है तो एकत्र करके लड़ाया जाता था। युद्ध में विजय बहुत हद तक कुशल व्यूह रचना पर निर्भर होती थी। व्यूह आक्रमणात्मक और प्रतिरक्षात्मक दोनों ही प्रकार के होते थे। पाण्डवों को कौरवों की विशाल सेना पर विजय इन्हीं उपयुक्त व्यूहों के कारण मिली थी। व्यूह मैदानी युद्ध (जैसे कुरुक्षेत्र) में प्रयुक्त हो सकते थे। किन्तु किसी दुर्ग के अन्दर शत्रु सेना पर हमला करने में इनका प्रयोग इतना अधिक महत्व नहीं रखता था। खाई को पार कर दुर्ग की दीवारों और द्वारों को तोड़कर प्रवेश करना ही आवश्यक था। राम-रावण युद्ध से दुर्ग युद्ध का प्रमाण हमें मिलता है। मनु का कथन है कि स्थान विशेष के अनुसार विभिन्न प्रकार के सेना व हथियारों का तथा विभिन्न राज्यों के सैनिकों का प्रयोग करना चाहिए। (मनु० 7/192-193)। चूँकि रथों का महत्व इस काल में अधिक था इसलिए सेनानायक रथों पर सवार होकर ही युद्ध करते थे।

Scanned by CamScanner